अ ध्या य पाँ च वाँ

-- दर्शन और आचार --

दर्शन और आचार

दर्शन का स्वरूप ---

'दर्शन' शब्द का अर्थ 'ज्ञान शब्द कोश' के अनुसार 'जानना' होता है। वह शास्त्र जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत, धर्म, मोक्ष, मानव जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण तथा तत्वज्ञान हो।

'दर्शन' शब्द का अर्थ देखना भी होता है। दृश् धातु से करण अर्थ में ल्युट प्रत्यय लगाने से दर्शन शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ 'देखना' है। देखने की क्रिया आँखों से होती है। अतएव दर्शन का अर्थ आँखों द्वारा देखना, देखा हुआ यह हुआ। आँखों का देखना स्वाभाविक धर्म है। बौद्धिक विकास स्तर के अनुसार मनुष्य के देखने का स्वरूप बदलता रहता है। दृश्य जगत् के विविध रूपों को देखते-देखते वह उनके भीतर प्रवेश करने लगता है। चिन्तन, मनन आदि साधनाओं से उसमें समाहित रहस्य को समझने लगता है। जिनके बारे में कहा गया है 'नहीं ज्ञानात् परमम चक्षु:।' इस दिव्य ज्ञान दृष्टि को पाकर समस्त ब्रह्मांड में सम्यक् सत्य का दर्शन होने लगता है। इस तरह अंतर एवं बाह्य दृष्टि से जगत् के मूल कारण तथा मूल स्वरूप को समझना 'दर्शन' का लक्ष्य है।

कबीर का तत्वज्ञान दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन का फल नहीं है। वह उनकी अनुभूति और सारग्राहिता का प्रसाद है। वह पढ़े-लिखे तो थे नहीं, उन्होंने जो कुछ ज्ञानसंचय किया, वह सब सत्संग और आत्मानुभव से था। वह जिन परिस्थितियों से गुजरे, उससे पूर्ण रूप से प्रभावित थे। उसमें सामाजिक चेतना और सामाजिक प्रेरणा है जो पथ-भ्रान्त मानव को एक उचित मार्ग दिखाता है।

कबीर की वाणी पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उनमें तत्वचिन्तन बड़ा ही गम्भीर था। उन्होंने पुस्तक-ज्ञान का खण्डन किया है, परन्तु

तत्कालीन दार्शनिक चिन्तन-प्रणालियों की उन्हें सूक्ष्म जानकारी थी।

कबीर ने अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने के लिए कविता को साधन के रूप में ग्रहण किया है। उनकी रचनाओं में विभिन्न मतों एवं दार्शनिक विचारों का प्रभाव लक्षित होता है, परन्तु उन्हे किसी विशिष्ट मत या दार्शनिक चिन्तन पध्दति का अनुयायी मानना उचित नहीं है। वे किसी मत विशेष या सिद्धांत विशेष को लेकर नहीं चलते। उन्होंने कभी भी दार्शनिक होने का दावा नहीं किया है और न ही उन्होंने किसी सिद्धांत का दार्शनिक ढंग से प्रतिपादन किया है, फिर भी उनकी रचनाओं में विभिन्न दार्शनिक विचारों को बहुत अधिक परिमाण में स्थान प्राप्त हुआ है। इसका कारण कबीर की अनुभूति और सारग्राहिता वृत्ति ही है।

कबीर का ब्रह्म --

कबीर ने ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान सत्संगती और चिन्तन द्वारा प्राप्त किया था। कबीर ने ब्रह्म को परम तत्व माना है। वह ब्रह्म सब का मूलाधार एवं एक रस है। कबीर ने ब्रह्म के लिए राम, शंकर, हरि, गोविन्द, निरंजन, रहीम आदि कई नामों का प्रयोग किया। कबीर का ब्रह्म अनिर्वचनीय है। हर कोई उसे अपनी अपनी शक्ति के अनुसार जान सकता है। कबीर कहते हैं माया ने उन्हें खूब छकाया, भटकाया, सतगुरु की कृपा से ही कबीर का ब्रह्म से परिचय हुआ।

ब्रह्म ही जगत में एकमात्र सत्ता है, इसके अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है। जो कुछ है, ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही से सब की उत्पत्ति होती है और फिर उसी में सब लीन हो जाते हैं। कबीर के शब्दों में ----

' पानी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ।। '[1]

कबीर के अनुसार जिस प्रकार पानी से बर्फ बनती है और बर्फ पिघल कर पानी बन जाता है, ठीक उसी तरह अन्त: करण में जो चिदाभास (जीव) है, वह फिर लीन होने पर चिन्मात्र हो जाता है। अर्थात् जीव ब्रह्म के रूप में आ जाता है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

जीव का जो मूल स्वरूप था उसी में अब वह रूपान्तरित हो गया। इसलिए अब उसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। क्योंकि कोई नई वस्तु नहीं पैदा हुई है।

डा. गोविन्द त्रिगुणायत का कथन है कि — 'कबीर का ब्रह्म निरूपण वैदिक एकेश्वरी अद्वैतवादी होते हुए भी सर्वात्मवाद और परात्परावाद के अधिक समीप है।' [२]

कबीर के मतानुसार ब्रह्म एक, अद्वैत और भेदातीत है वह अव्यक्त अतिन्द्रिय और अप्रेम है। वह स्वयं प्रकाश और स्वयं सिद्ध है। वह सचिदानन्द स्वरूप है। भावनागम्य तथा बुद्धि से परे विराट स्वरूप है। कबीर के मतानुसार जीव भी ब्रह्मांश है। जीव और ब्रह्म का अभिन्न सम्बन्ध है।

कबीर का ब्रह्म पूर्णत: अनिर्वचनीय है।

'अविगत अगम अनूपम देख्या कहतां कहा न जाई
सैन कर मन ही मन रहसै गूंगै जानि मिठाई।।' [३]

कबीर के मतानुसार ब्रह्म ज्ञान का अनुभव मात्र किया जाता है, कथन नहीं। जिस प्रकार गुंगा गुड के स्वाद को संकेतों द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न करता है, वैसे ब्रह्म ज्ञान भी संकेतों द्वारा प्रकट करने का कबीर ने प्रयत्न किया है।

ब्रह्म के लिए कबीर ने जिन अनेक नामों का प्रयोग किया है उनमें से कुछ उपनिषदों, कुछ नाथपंथियों से भी है साहब, अलख, अच्छे पुरुष आदि शब्द भी कबीरदास ने गढे हैं। एक ओर तो कबीरदास ने अवतारवाद का विरोध किया है और उन शब्दों में उन्हें राम शब्द अधिक प्रिय है। परन्तु कबीर का राम दशरथ पुत्र नहीं था।

सूफी सन्तों के अनुसरण पर कभी-कभी कबीर ने ब्रह्म को नूर रूप भी कहा है। नूर का अर्थ भी प्रकाश या ज्योति होता है। कबीर ने भी प्रकाश रूप ब्रह्म का वर्णन किया है। कबीर ब्रह्म के अनन्त तेज का वर्णन शत सूर्य श्रेणियों के उपमान से करते हैं।

' कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि ।
पति सँगि जागी सूंदरी, कौतिग दीठा तेणि ।। ' [४]

कबीर कहते है कि अनंत अर्थात् परमात्मा की ज्योति इतनी प्रबल है मानों सूर्य की श्रेणी उदय हुई हो । परन्तु इस ज्योति का अनुमव सबको नहीं होता । जो जीव मोह-निद्रा में सोता नहीं रहता, परमात्मा के साथ जागता रहता है, उसी के द्वारा यह रहस्य देखा जाता है। अर्थात् आत्मा के साथ जो जीव जागता रहता है, वही इस आनन्दमय रहस्य का अनुमव करता है।

कबीर के अनुसार परब्रह्म का इस ' अनन्त-तेज ' का वर्णन शब्दातीत है। यह केवल अनुमव की वस्तु है।

' पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूं सोमा नहीं, देख्याहीं परवान।। ' [५]

कबीर के मतानुसार परब्रह्म के प्रकाश का क्या अनुमान लगाया जा सकता है ? अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान आदि साधन तो लौकिक या मायिक जगत् के हैं। उसका साक्षात्कार इन किसी मी साधनों के क्षेत्र में नहीं है। उसका सौंदर्य अनिर्वचनीय है।

कबीर का ब्रह्म विभिन्न मतमतान्तरों से प्रमावित होते हुए मी उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के अधिक निकट है। उनकी पूर्ण आस्था सदैव निर्गुण निराकार अव्यक्त के प्रति ही रही।

कबीर के ईश्वर सम्बन्धी विचार —

कबीर ने मूर्तिपूजा सगुणोपासना अवतारवाद आदि का खण्डन किया है। नाम में क्या रखा है ? नाम के पीछे जो एक चित् सत्ता है वही सब कुछ है। नाम रूप से ही वह अनिर्वचनीय ब्रह्म ईश्वरतत्व को प्राप्त होता है। उस सगुणातीत ब्रह्म की प्राप्ति मक्ति और योग के द्वारा ही हो सकती है और वह गुरु कृपा से ही संमव है।

कबीर का निर्गुण ब्रह्म भारतीय वेदान्त के अधिक निकट क्यों न हो परन्तु कबीर का ब्रह्म वेदान्त निष्क्रिय ब्रह्म नहीं है। वह सृष्टि का कर्ता है। संसार की स्थिति और लय भी उसी के कार्य हैं। कबीर का ब्रह्म उसके बन्दे के साथ रहता है। वह भक्त-वत्सल है।

कबीर का राम प्रेममय है, इच्छामय है, क्रियामय है। कबीर का राम घट-घट वासी है। वही जगत् का रूप धारण करता है, वही जीव है उसे ढूँढने के लिए कहीं दूर जाना नहीं पड़ता।

भक्त साधना द्वारा भगवान् और भक्त का भेद मिटा सकता है, नहीं तो ब्रह्म और जीव का भेद बना ही रहता है। निर्गुण और सगुण से परे चिन्मय सत्ता को प्रेम का विषय बना देना कबीर की मौलिकता है। घर-घर में रमे हुए राम को कबीर ने भक्ति का विषय बनाया। कबीर का राम अनुभूति का विषय है, तर्क का नहीं। कबीर का ब्रह्म या ईश्वर ज्ञानगम्य और अनुभूतिगम्य है।

जीवात्मा --

कबीर ने जीव को निराकार,अनन्त एवं निर्विकार निरूपित किया है। वह सन्सार के नाम रूप से परे है। वह न जन्म लेता है, न मरता है। कबीर जीव को स्वयं प्रकाश,चैतन्य तथा आनन्द स्वरूप मानते हैं। जीव ईश्वर का अंश है, किन्तु ईश्वर से अलग होने पर वह आत्मा स्वरूप को भूलकर सन्सारी हो जाता है। उसी प्रकार अविद्या के निकल जाने पर जीव अपने मूल स्वरूप को प्राप्त होता है। जीव और आत्मा की विवेचना करते हुए आत्मा की व्यावहारिक प्रतीति को कबीर ने जीव के नाम से अभिहित किया है। आत्मा अपने स्वरूप लक्षण के अनुसार नित्य, मुक्त,शुद्ध,चैतन्य,अजर,अमर है, परन्तु वह माया के कारण भ्रम से अपने को करता-मरता और शरीरी समझ लेती है। आत्मा का मूल सत्ता रूप एक है। यहाँ अनेक जीव भ्रम तथा अज्ञान के कारण ही दिखायी पड़ते हैं। कबीर कहते हैं --

" जल में कुंभ, कुंभ में जल,बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल, जल ही समाना, यह तथ कथ्यौ गियानी।। " [6]

वस्तुत: यह सृष्टि इस प्रकार है कि संसार के जल में शरीर रूपी एक घट है, जिस में भीतर जल विद्यमान है — शरीर में समस्त सत् इस सृष्टि के ही है — एवं उसके बाहर तो संसार रूपी जल है ही। शरीर रूपी घट के फट जाने पर शरीर-घट स्थित जल रूपी आत्मा शेष संसार में व्याप्त परमात्मा से मिल जाती है।

कबीर ने भेद की प्रतीति भ्रम में देखी है। भ्रम में पड़ने से जीव में एकता और परमात्मा की एकता से अनभिज्ञ होने एवं उसकी अनुभूति न कर सकने पर भी परमात्मा के वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता।

कबीर ने घड़े और आकाश के दृष्टांत को लेकर कहा है जिस प्रकार घड़े के बाहर और भीतर आकाश दिखाई देता है उसी प्रकार शरीर के भीतर भी वही परमात्मा है जो बाहर है। सत्य तो यह है कि शरीर की स्थिति इसी परमात्मा के अस्तित्व में ही है। अत: कोई चाहे जाने या न जाने, वह ब्रह्म तो है ही। जीव और ब्रह्म में इतना भी भेद नहीं है कि हम उन दोनों को एक ही मूल तत्व के दो भेद कह सकें। पूर्ण ब्रह्म के दो पक्ष हो ही नहीं सकते।

<u>जगत्</u> —

कबीर ने अद्वैतवाद के अनुसार ही ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या माना है। संसार को जल की बूंद के समान नश्वर माना है। इसकी उत्पत्ति और नाश में देर नहीं लगती —

" ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा।
उपजत विनसत लगै न बारा।।"[7]

जगत् की उत्पत्ति होती है, नाश होता है। आँखों के सामने ही यह जगत् उत्पन्न होकर नष्ट हो रहा है। मनुष्य जगत् में आकर भ्रम में पड़ जाता है और उस स्त्रष्टा को नहीं पहचानता। इसी तथ्य को कबीर ने जगत्-रूपी वृक्ष के रूप में चित्रित किया है —

" रूक विरख यह जगत् उपाया, समझि न परै विखम तेरी माया।
साखा तीन पत्र जुग चारी, फल दोइ पाप पुनि अँधियारी ।।"[8]

अर्थात् यह जगत् एक वृक्ष के समान है जिसमें त्रिगुणात्मक माया-रूपी तीन शाखाएँ हैं स्वेदज, अण्डज, जरायुज तथा उद्भिज - चार प्रकार के जगत् रूपी चार पत्ते हैं और पाप एवं पुण्य रूपी दो फल हैं।

यह संसार बिराने देश के समान है। यह कागज की उस पुड़िया जैसा है जो बूंद पड़ने पर घुल जाती है ——

" रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।। " ९

कबीर जगत् की क्षणभंगुरता के बारेमें विचार प्रकट कर रहे हैं। जिस दुनिया में हमारा जन्म हुआ, जिस में हमारा विकास हुआ, जिस में हमें विविध आकर्षण लुभा रहे हैं, यह सब झूठ है। यह दुनिया एक वीरान देश मरुभूमि है, अज्ञात देश है। इस दुनिया का निश्चित अर्थ किसी को मालूम नहीं। यह दुनिया धर्मशाला के समान है, जिस प्रकार धर्मशाला में यात्री आते हैं। कुछ दिनों तक रहते हैं फिर आगे चले जाते हैं उसी प्रकार इस संसार में जीवों का आना जाना है। यह धर्मशाला शाश्वत नहीं है। यहाँ जीव का जीवन क्षणभंगुर है। इस जीवन में आनेवाला प्रत्येक जीव कुछ दिनों तक रहता है, अपनी जीवन-लीला समाप्त करता है। उसी प्रकार इस की भी हालत है। यह भी शाश्वत नहीं है, कई युगों के बाद नष्ट होने वाली है। कबीर ने कागज की उपमा देकर स्पष्ट किया है — यह संसार कागज की पुड़िया है, जिस प्रकार कागज शाश्वत नहीं है उसी प्रकार यह जगत् है। कागज पर पानी गिरने के बाद वह गीला हो जाता है, पतला हो जाता है और अन्त में नष्ट हो जाता है। उस पर जो कुछ लिखा है, निशान है अर्थात् इस की सभी चीजें काल के प्रवाह में नष्ट होने वाली हैं।

इस नश्वर संसार में धन संचय करना, ऊँचे-ऊँचे महल बनाना और माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि से आत्मीयता के सम्बन्ध स्थापित करना सब व्यर्थ है। संसार की मिथ्यता एवं मानव-जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन कबीर ने किया है —

" झूठे सुख कों सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
खलक चबैना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद।। " १०

लोग अपने अज्ञानवश झूठे सुख को सच्चा सुख मान लेते हैं और मन में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। उनका इस ओर ध्यान ही नहीं जाता कि संसार में जो कुछ है, वह क्षणभंगुर है। यह संसार काल का चबेना है। इसमें कुछ प्राणी काल का ग्रास बन चुके हैं और कुछ उसकी पकड़ में जकड़े हुए ग्रास बनने की प्रतीक्षा में हैं।

> ' पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति।
> देखत ही छिपि जाइंगे, ज्यों तारे परभाति।। '[११]

कबीर के अनुसार प्राणीमात्र जिसने जन्म लिया है, वह पानी के बुलबुले के समान नश्वर है। जैसे प्रात: काल में नक्षत्र देखते-देखते अस्त हो जाते हैं, वैसे ही मनुष्य आदि प्राणी भी अल्पकाल में विनाश को प्राप्त होते हैं।

संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह वास्तव में सत्य नहीं है, वह भ्रम के कारण सत्य जैसा प्रतीत होता है, किन्तु यथार्थ में वह मिथ्या है।

<u>माया</u> —

संसार में जीव के बंधन का कारण माया है। संसार और उसके सारे प्रलोभन इसी के प्रतिरूप हैं। जीव इसी के कारण आवागमन के बंधन में फँसा है। अपने आकर्षणों के कारण यह मोहक है और सामान्य व्यक्ति के वश का नहीं है कि इसे छोड़ दे। कबीर कहते हैं —

> ' मीठी मीठी माया, तजी न जाई।
> अज्ञानी पुरिष को भोलि भोलि खाई।। '[१२]

माया को हर व्यक्ति नहीं जानता और जो इसको नहीं जानता, उसी को वह सताती है। त्रिलोक-विजयिनी इस माया को कोई नहीं खा सकता। जब तक जीव माया के जाल में फँसा रहता है, तब तक वह ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता। किन्तु जिन्हें परमात्मा का ज्ञान हो जाता है, उन्हें माया का भी ज्ञान हो जाता है। फिर उनके लिए माया न भयंकर है और न मोहक ही। कबीर ने माया की मोहक शक्ति का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है।

> ' कबीर माया मोहिणी, जैसे मीठी खाँड।
> सतगुरु की किरपा भई, नहीं तो करनी भाँड।। '[१३]

कबीर कहते हैं, माया बड़ी सम्मोहक खांड के समान मीठी होती है। मेरे सद्गुरू ने कृपा कर इसके जाल से विमुक्त कर दिया। नहीं तो यह (कबीरदास को) नष्ट करके ही छोड़ती।

"कबीर माया पापणीं, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।।" [१४]

माया सर्व व्यापिनी है। यह परमात्मा की ठगोरी है। इसके प्रभाव से जीव को स्वरूप विस्मरण हो जाता है। कबीर ने माया की आवरण शक्ति को ही विशेष रूप से देखा है। उसकी विशेषता यह है कि वह सत्य को आवृ करती है जिससे मनुष्य सत्य को सत्य न समझ कर झूठ को ही सत्य मान बैठता है। माया का प्रथम पुरस्कार भ्रम की उत्पत्ति है। यही कारण है कि कबीर ने माया के संकेत में बड़ी कटूक्तियों का प्रयोग किया है।

"कबीर माया पापणीं, लालै लाया लोग।
पूरी किनहूं न भोगई, इनका इहै बिजोग।।" [१५]

कबीर माया को पापिणी, वेश्या मानते हैं। अपने आकर्षण द्वारा वह लोगों को फँसाती है।

"कबीर माया डाकणी, सब किसही कौं खाइ।
दांत उपाड़ौं पापणीं, जे सन्तौं नेड़ी जाइ।।" [१६]

कबीर कहते हैं कि माया पिशाचिनी है, जो संसार के सब ही मनुष्य को खाती है। यदि यह साधु जनों के पास भी फटकी तो इस पापिणी के दाँत उखाड़ दूँगा।

कबीर के अनुसार माया के चक्कर में पड़कर जीव निरन्तर आवागमन के बंधन में पड़ा रहता है और वह उस परम तत्व का साक्षात्कार नहीं कर पाता। गुरु उपदेश द्वारा ज्ञान उत्पन्न होने पर माया के पर्दे का नाश हो जाने से जीव परमात्मा से ऐक्य करने में समर्थ हो जाता है।

मोक्ष

'मोक्ष' का अर्थ है — जीवन - मरण के चक्र से छुटकारा। तत्वज्ञान होने से मनुष्य आसक्ति रहित होता है, उसकी कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती। कर्म में प्रवृत्ति न होने से उसका फल भोगने का प्रश्न नहीं उठता। इसलिए जन्म-मरण का क्रम समाप्त हो जाता है। जीवात्मा संसार से मुक्त हो जाता है और परम तत्व से मिलकर एकाकार हो जाता है।

मध्यकालीन भक्तों और सन्तों ने संसार को भवसागर माना है और इससे मुक्त होने को कहा है। सामान्य धारणा यह है कि संसार से छुटकारा पाकर जीव वैकुण्ठ लोक में पहुँच जाता है। कबीरदास किसी वैकुण्ठ लोक में विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं कि हे भगवान! हमको तार कर कहाँ ले जाओगे? वह वैकुण्ठ कहाँ और कैसा है? जिसे कृपा करके आप हमें देंगे। मुक्ति का प्रश्न तो तब उठता है जब आपने हमको अपने से दूर कर दिया हो। जब आप सब में रम रहे हैं तो क्यों भ्रमाते हैं। तारने और तरने का प्रश्न तभी तक है जब तक तत्वज्ञान नहीं होता। कबीर ने सभी में एक राम की सत्ता लक्षित कर ली है। अब उसे पूर्ण मानसिक शान्ति प्राप्त है।

कबीर की दृष्टि में राम से एकमेक होना ही मुक्ति है। इसके लिए राम की सर्वव्यापकता एवं नित्यता का ज्ञान आवश्यक है। कबीर के अनुसार जगत् की समस्त आशाओं को त्याग देना ही जीवन-मुक्त होना है।

आचार —

अच्छे व्यवहार को आचार कहा गया है। जिससे हमारा खुद का और सारे संसार का भला हो यही 'आचार' है।

कबीर एक युगद्रष्टा थे। उनकी दृष्टि समग्र जीवन पर थी और जीवन-समाज का एक अंग है, इसीलिए उसे भी वे अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर सके। इसके अतिरिक्त उनका युग व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का था। सामाजिकता उस समय थी

नहीं। धर्म आदि की दृष्टि से जो अपने उत्थान में लगे थे, उनका समाज से जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था। उन्हें केवल अपना ध्यान था। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भी कबीर का ध्यान व्यष्टि के साथ समष्टि पर गया और एक की उन्नति दूसरे के बिना उन्हें असम्भव दिखाई पड़ी। इसलिए उन्होंने व्यष्टि और समष्टि को मिलाने की चेष्टा की। मानव समष्टि ही नहीं अपितु अहिंसा दया तथा 'जबह' का विरोध आदि के द्वारा उन्होंने जीव मात्र को इस परिधि में समेट लिया।

कबीर जो सोचते, उसी को कहने और करने में विश्वास रखते थे; किन्तु इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण भी यह आवश्यक था कि चिन्तन की सारी धाराएँ एकरूप हो गयी थीं। इसी कारण कबीर के दर्शन, उनकी भक्ति, उनके धर्म और आचार-विचारों को हम पूर्णतया सुसम्बद्ध पाते हैं।

<u>समत्व</u> —

कबीर दार्शनिक के रूप में अद्वैतवादी थे। इसी कारण वे सभी को समान समझते थे। उनके लिए कोई ऊँचा नहीं था, कोई नीचा नहीं था।

'ऊँच नीच समसरिया, ताथै जन कबीर निसतरिया।।' १७

कबीर के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण-भेद भी निरर्थक था।

' एक ज्योति से सब उतपन्ना को ब्राह्मण को सूद।।' १८

कबीर स्पष्ट कहते हैं कि ब्राह्मण को ऊँचा होना था, तो वह और किसी मार्ग से आया होता। उसकी धमनियों में खून की जगह दूध बहता ताकि उसे सभी बड़ा मान लें। हिन्दू-मुसलमान आदि विभिन्न धर्म भी उनके लिए अर्थहीन थे।

' कहै कबीर एक राम जपहुरे हिन्दू तुरक न कोई।' १९

इसी प्रकार सारी जातियों और सारे सम्प्रदायों के लोग एक हैं। कबीर का सभी के एक या समान होने में अटूट विश्वास था और इसीलिए उन्होंने खुद उसके

अनुरूप आचरण किया और समाज को भी उसके अनुसार चलने को प्रेरित किया।

<u>समन्वय</u> —

कबीर महान चिन्तक और सहज ही समन्वयवादी थे। वे सारग्राही थे। उस हंस जैसे जो मोती कहीं से भी चुन सकता है।

'कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ।
बगुला भेद न जाणई, हंस चुणे चुण खाइ।।' [२०]

कबीरदास ने विभिन्न मत मतान्तरों से, हंस जिस प्रकार सागर की लहरों में से मोती चुन लेता है, विचार और व्यवहार के मोती चुन लिए और उन सब में उचित समन्वय स्थापित किया।

कबीर के समन्वय में निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग का समन्वय था। लोक और परलोक के व्यवहार, संन्यास धर्म और गृहस्थ धर्म का समन्वय था। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इनका समन्वय था। कर्म करते हुए भी भक्ति करने के पक्षपाती होकर उनका भी समन्वय उन्होंने किया था। निवृत्ति मार्ग की भक्ति, ज्ञान और योग तीनों शाखाओं का उन्होंने समन्वय किया था। वे हठयोग साधक थे, योगी थे। वे भक्ति करते थे और भक्त थे। वे ज्ञान को भी आवश्यक मानते थे और ज्ञानी थे।

कबीरदास योगियों को उपदेश देते हैं कि मन का मैल छोड दे और हे वीर! शरीर के पंच प्राणों को दृढ़ करके, दृढ आसन लगा दे।

'आसन पवन लिए दृढ़ रे।
मन को मैल छान्डि दे वीर।।' [२१]

साधक अनेक समय दुबिधा में होता है। उसके मन में संशय वृक्ष पैदा होता है। उसे इसका हल बताते हुए वे कहते हैं — परमेश्वर में दृढ विश्वास के साथ उसकी भाव-भगति करने से ही संशय वृक्ष का मूल कट जाता है।

'भाव - भगति विश्वास बिन कटे न संसै मूल।।' [२२]

कबीर ज्ञान और धर्म को एकरूप मानते हैं। वे भिन्न नहीं हैं। सच्चा ज्ञान और सच्चा धर्म एक है। इसलिए वे कहते हैं ——

' जहाँ ज्ञान तहाँ धर्म है। ' [23]

ज्ञान का महत्व स्पष्ट करते हुए वे मानते हैं कि जिस कुल में ज्ञानी, विचारवान पुत्र नहीं है, उसकी माँ विधवा कैसी नहीं बनी ? साफ है कि ज्ञान को कबीर बहुत महत्व देते हैं। पुत्र के ज्ञान से ही माँ सौभाग्यशाली मानी जाती है।

' जिहि कुल पूत न ज्ञान बिचारी।
विधवा कसि न भई महतारी ।। ' [24]

कबीर का मध्यम मार्ग भी दो सीमाओं का समन्वय ही है, जिस में सुख-दुख, प्रवृत्ति-निवृत्ति, भूख-भोजन आदि की सीमाओं को छोड़ बीच में चलने का उन्होंने आदेश दिया है। भिन्न-भिन्न धर्मों से अच्छी बातों-सार-को ग्रहण कर उन्होंने थोथा उड़ा दिया है और समन्वय किया है। कथनी और करनी में उन्होंने समन्वय साधा है और इस संबंध में वे खुद कहते हैं ——

' कथनी कथी तो क्या भया, जे करनी न ठहराइ। '
या
' जैसी मुख ते नीकसैं तैसी चालै चाल। ' [25]

जिस प्रकार तुम बोलते हो उसी प्रकार तुम्हारी चाल चलन हो। उसी प्रकार सिर्फ कहने मात्र से क्या होता है ? अगर उसके अनुसार प्रत्यक्ष आचरण न हो ?

' वास्तव में कबीर के समन्वय ने धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सहिष्णुता एवं समानता का एक पुष्ट एवं तर्क-संगत आधार प्रस्तुत किया, जिसने देश को एक सर्वनाशी संघर्ष से बचाकर भारतीय संस्कृति के संरक्षण में महत्वशील योग प्रदान किया है। ' [26]

— निष्कर्ष —

कबीर का अनुभव-विश्व समृध्द था। वह उनकी अनुभूति और सारग्राहिता का प्रसाद है। वह अशिक्षित थे। उन्होंने जो कुछ ज्ञान संचय किया, वह सब सत्संग और आत्मानुभव से था। वह जिन परिस्थितियों से गुजरे, उससे पूर्णरूप से प्रभावित थे। उसमें सामाजिक चेतना और सामाजिक प्रेरणा है जो पथ-भ्रान्त मानव को एक उचित मार्ग दिखाता है।

कबीर का ब्रह्म विभिन्न मतमतान्तरों से प्रभावित होते हुए भी उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के अधिक निकट है। उनकी पूर्ण आस्था सदैव निर्गुण निराकार अव्यक्त के प्रति ही रही। कबीर ने मूर्तिपूजा,अवतारवाद आदि का खण्डन किया है। कबीर का राम घट-घट वासी है। वही जगत् का रूप धारण करता है, वही जीव है उसे ढूँढने के लिए कहीं दूर नहीं जाना पड़ता।

कबीर ने जीव को निराकार,अनन्त एवं निर्विकार निरूपित किया है। कबीर ने अद्वैतवाद के अनुसार ही ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या माना है। संसार को जल की बूंद के समान नश्वर माना है। संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह वास्तव में सत्य नहीं है। वह भ्रम के कारण सत्य जैसा प्रतीत होता है; किन्तु यथार्थ में वह मिथ्या है।

कबीर के मतानुसार संसार में जीव के बंधन का कारण माया है। संसार और उसके सारे प्रलोभन इसी के प्रतिरूप हैं। जीव इसीके कारण आवागमन के बंधन में फँसा है। गुरु उपदेश द्वारा ज्ञान उत्पन्न होने पर माया के पर्दे का नाश हो जाने से जीव परमात्मा से ऐक्य करने में समर्थ हो जाता है।

कबीर के अनुसार राम में " एकमेक " होना ही मुक्ति है। जगत् की समस्त आशाओं को त्याग देना ही मुक्ति है।

कबीर को केवल अपना ही ध्यान नहीं था। उनका ध्यान समाज पर भी था। उन्होंने व्यष्टि और समष्टि को मिलाने की चेष्टा की। उनकी कहानी और

कथनी में फर्क नहीं था । उनके चिन्तान की सारी धाराएँ एकरूप हो गई थीं । इसी कारण उनकी भक्ति,उनके धर्म और आचार-विचारों को हम पूर्णतया सुसम्बद्ध पाते हैं ।

निवृत्ति-प्रवृत्ति, लोक-परलोक,गृहस्थ-सन्यास के व्यवहार में उन्होंने समन्वय स्थापित किया । कबीर ने विभिन्न मत मतान्तरों से अपने विचार और व्यवहार चुन लिए और उन सब में उचित समन्वय स्थापित किया ।

संदर्भ सूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
१	कबीर ग्रंथावली	संपादक डा.श्यामसुंदरदास	२६ स	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण, सं.२०४१ वि.
२	कबीर की विचारधारा	डा.गोविन्द त्रिगुणायत	१७९-१८०	साहित्य निकेतन कानपुर,तृतीय संस्करण, श्रावणी सं.२०२४
३	कबीर जीवन और दर्शन	डा.भोलानाथ तिवारी	५६	साहित्य भवन(प्रा.) लिमिटेड,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९७८
४	कबीर ग्रंथावली	संपादक डा.श्यामसुन्दरदास लेख 'साखी'	९	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण, सं.२०४१ वि.
५	— वही —	,,	१०	— वही -
६	— वही —	'प्रस्तावना'	२७	— वही -

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक, प्रकाशन एवं संस्करण
७	युगपुरुष कबीर	डा. रामलाल वर्मा डा. रामचन्द्र वर्मा	१३५	भारतीय ग्रन्थ निकेतन दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७८
८	— वही —	,,	१३५	— वही —
९	कबीर	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	२५७	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७१
१०	साखी	डा. जयदेव सिंह डा. वासुदेवसिंह	२८९	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९७६
११	— वही —	,,	२९६	— वही —
१२	कबीर जीवन और दर्शन	डा. भोलानाथ तिवारी	६३	साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९७८
१३	युगपुरुष कबीर	डा. रामलाल वर्मा डा. रामचन्द्र वर्मा	१३७	भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : १९७८
१४	— वही —	,,	१३८	— वही —

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन
१५	कबीर ग्रंथावली	डा.सावित्री शुक्ल डा.चतुर्वेदी	१७९	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, प्रियंवदा प्रेस, आगरा
१६	— वही —	,,	१८५	— वही —
१७	कबीर जीवन और दर्शन	डा.भोलानाथ तिवारी	९४	साहित्य भवन(प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद,प्रथम संस्करण:१९७८
१८	— वही —	,,	९४	,,
१९	— वही —	,,	९५	,,
२०	— वही —	,,	९५	,,
२१	— वही —	,,	९६	,,
२२	— वही —	,,	९६	,,
२३	— वही —	,,	९६	,,
२४	कबीर जीवन और दर्शन	,,	९६	,,
२५	— वही —	,,	९६	,,
२६	कबीर काव्य कौस्तुभ	डा.बालमुकुन्द गुप्त	१८	साहित्य संगम आगरा चतुर्थ संस्करण : १९७१।

..